॥ श्रीहरिः ॥
270▲
भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द
एवं महात्मा किसे कहते हैं ?
जयदयाल गोयन्दका
गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

॥ श्रीहरि: ॥

भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द एवं महात्मा किसे कहते हैं ?

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

॥ श्रीहरिः ॥

भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द

भगवान् दया करके ही सबका उद्धार करते हैं। भगवान् बड़े प्रेमी हैं, बड़े दयालु हैं। गीतामें भगवान्‌ने अपने विषयमें स्वयं ही कहा है—

'सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥'

(५।२९)

'मुझको सम्पूर्ण भूतप्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थ-रहित प्रेमी, ऐसा तत्त्वसे जानकर साधक शान्तिको प्राप्त होता है।'

यदि कहें कि हम भगवान्‌को परम दयालु, परम प्रेमी, हेतुरहित दया करनेवाले, हेतुरहित प्रेम करनेवाले मानते हैं तो हम यही कहेंगे कि आप मानते नहीं, कहते हैं। हम इस बातको जब समझ जायँगे कि भगवान् परम प्रेमी हैं तो फिर हम भगवान्‌को छोड़कर किसीसे भी प्रेम नहीं करेंगे। भगवान् प्रेममें बिक जाते हैं। प्रेमी भगवान्‌को

खरीद लेता है और बेच भी सकता है। प्रेमीको भगवान्‌का दर्शन होता है, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

(रा०च०मा० १।१८४।३)

यह तो नीति है कि भगवान् सब जगह व्यापक हैं और प्रेमसे प्रकट होते हैं, किंतु प्रेमसे प्रकट होकर उसको दर्शन ही देते हैं, इतनी ही बात नहीं है। वे प्रेमीके अधीन हो जाते हैं। '**अहं भक्तपराधीनः**'—मैं भक्तोंके अधीन हूँ। इतना ही नहीं, भक्त आगे-आगे चलता है, वे पीछे-पीछे चलते हैं। उनके चरणोंकी धूल अपनेपर पड़ जाय तो अपनेको पवित्र मानते हैं—

'**अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥**'

(श्रीमद्भा० ११।१४।१६)

'उस महात्माके पीछे-पीछे मैं निरन्तर यह सोचकर घूमा करता हूँ कि उसके चरणोंकी धूल उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ।'

क्योंकि भक्तकी ऐसी मान्यता है—

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'

(गीता ४। ११)

'जो मेरेको जैसे भजते हैं, मैं भी उनको वैसे ही भजता हूँ।'

इतना ही नहीं, भगवान्‌को कोई भक्त बेच दे यानी दूसरेको दे दे तो भगवान् कहते हैं कि वह मुझको दे सकता है। ऐसी कथाएँ आती हैं। नरसी मेहताके लिये भगवान्‌ने कहा है—***'बेचे तो बिक जाऊँ। नरसी म्हारो सिर धनी।'*** नरसी हमारा मालिक है, मुझको बेचे तो मैं बिक जाऊँ।

नरसी मेहताने भगवान्‌पर एक हुण्डी सात सौ पचास रुपयेकी कर दी। रुपये देकर हुण्डी लेकर वे द्वारकामें गये। वहाँ पता लगा नहीं। लोगोंने पूछा—'तुम्हें क्या पता बतलाया?' उन्होंने कहा—'द्वारकाधीशके मन्दिरके पास साँवल-शाह'। तब लोगोंने कहा—'यहाँ तो कोई इस नामका आदमी नहीं और न कोई दूकान ही है। तुम किसीके धोखेमें आ गये।' वे पश्चात्ताप करते हुए वापस लौटे और सोचने लगे, चलकर नरसीकी बेइज्जती करेंगे। रात्रिका समय हो गया। द्वारकाके किनारे

आकर शयन करने लगे। बड़े दुःखित थे, इसलिये नींद नहीं आयी, केवल लेट गये थे। इतनेमें भगवान् आये, बोले—'यहाँ किसीके पास मेरे नामकी सात सौ पचास रुपयेकी हुण्डी है ? मैं हुण्डीवालेकी खोज कर रहा हूँ।' इसपर लेटे हुए उन व्यक्तियोंने कहा—'हम ही हुण्डी लेकर आये थे, पर आपका पता नहीं लगा।' इसपर भगवान्‌ने कहा—'आप रुपये ले लें और हुण्डी मुझे दे दें' और उन्होंने सात सौ पचास रुपये देकर हुण्डी ले ली तथा पुनः कहा—'एक मेरी प्रार्थना है—सेठके पास जाकर मेरी निन्दा मत करना। आपसे ही अपने अपराधकी माफी माँगता हूँ। मुझसे बड़ी गलती हुई। आप ढूँढ़ते रहे, रातका समय हो गया, मैं नहीं पहुँचा। मैंने सुना, तब तो दौड़कर आया, वहाँ मेरा अपराध वर्णन मत करना। आप ही मुझे माफ कर दें।' वे बोले—'देखो बिचारा भला आदमी है। हमलोग चले जाते, नरसीको गालियाँ देते, बेइज्जती करते। यह तो घरपर आकर ही हुण्डीका भुगतान दे गया।' वे सभी दूसरी बार फिर नरसीके पास पहुँचे और बोले,

'फिर हुण्डी दो।' नरसी बोले—'किसपर?' बोले—'साँवलशाहपर।' आपका गुमाश्ता तो बहुत ही भला आदमी है। हमको हुण्डीका भुगतान हमारे घरपर, हम लौटकर जा रहे थे, तब दे गया और कहने लगा—'मेरा अपराध क्षमा कर देना। जबकि उसका कोई अपराध भी नहीं था, वह हमको अपने स्थानपर नहीं मिला था, किंतु खोजते हुए हमारे पास पहुँच गया। गुमाश्ता तो आपका एक नम्बरका है।' नरसी बोले—'धन्यभाग्य है तुम्हारा। वे तो साक्षात् भगवान् थे। मैं तो तुम्हें नमस्कार करता हूँ, तुमको उनके दर्शन हो गये। हमारी वहाँ कोई दूकान नहीं, कोई गुमाश्ता नहीं, तुम हमारे गले पड़ गये तो भगवान्‌के भरोसेपर हुण्डी कर दी। हुण्डी भुन गयी, तुम्हारा अहोभाग्य है।' वे पश्चात्ताप करने लगे। उन्होंने द्वारकामें जाकर देखा तो अब वह दूकानदार वहाँ कहाँ मिले। तो यह एक प्रकारसे भगवान्‌को बेचना ही तो है। हुण्डी काट देना एक प्रकारसे बेचना है। तो भगवान्‌का भक्त दूसरेको भी भगवान्‌का दर्शन करा सकता है, स्वयं उसे भगवान्‌का दर्शन हो जाय तो इसमें शंकाकी बात ही क्या है।

भगवान्के प्रेमका विषय इतना गहन है कि वाणीकी गति नहीं कि उसको बतला सके। मनकी शक्ति नहीं कि कल्पना करके दृष्टान्त देकर वाणीको आज्ञा दे, बुद्धिकी भी क्षमता नहीं। समझना चाहिये कि असंख्य ब्रह्माण्डोंके मालिककी हम-जैसे तुच्छ प्राणियोंके साथ मित्रता ? हमारी उनकी क्या बराबरी ! यह भी ऐश्वर्यको लेकर उनके प्रभावको समझे। मैंने असंख्य ब्रह्माण्डका मालिक बतलाया, यह भगवान्की उपमा, उनका प्रभाव नीचे-से-नीचे दरजेका है। ओहो! असंख्य ब्रह्माण्डका मालिक नीचे-से-नीचे दरजेका है ? यह ऐश्वर्यको चाहनेवाले पुरुषोंके लिये है। ऐश्वर्यमय रूप ही तो बतलाया। एकका नहीं, बीसका नहीं, लाख ब्रह्माण्डका मालिक। भगवान्को ऐसा समझे तो एक-दो ब्रह्माण्ड ही तो देगा, तो ब्रह्माण्डके ऐश्वर्यसे उनको तौलते हैं न ? भगवान् ऐश्वर्यशाली ही तो हुए। जैसे कोई हजारों गाँवोंका राजा हो, ऐसे वह हजारों ब्रह्माण्डोंका मालिक है। राजा खुश हो तो एक-दो गाँव दे दे। भगवान् खुश हों तो उसको एक-दो ब्रह्माण्डका ऐश्वर्यशाली या ब्रह्मा बना दें, तो तुम्हारी भगवान्के विषयमें यही तो बुद्धि हुई !

भगवान् प्रेममय, आनन्दमय, चिन्मय, ज्ञानमय हैं, इसकी तो थोड़ी भी आपने कल्पना ही नहीं की। आप यदि यह समझें कि 'मेरा आत्मा अल्पज्ञ है, परमात्मा सर्वज्ञ है, मैं घटाकाशकी तरह हूँ और परमात्मा महाकाशकी तरह है। परमात्माकी उदारता देखो कि घटाकाशकी तरह एक जीव यदि परमात्माकी शरण जाये तो महाकाशस्थानीय परमात्मा अपने-आपको उसके हाथोंमें अर्पण कर दें।

जो अपने-आपको भगवान्‌के समर्पण कर देता है, भगवान् भी अपने-आपको उसके समर्पण कर देते हैं, यह उनकी उदारता देखो। अपनी औकात कितनी! एक तुच्छ! हम तो अल्पज्ञ हैं, तुच्छ हैं, परमात्मा महान् हैं। उनकी महत्ताकी तरफ खयाल करो। वे महान् ज्ञानस्वरूप, चेतनस्वरूप हैं। वह सर्वज्ञ परमात्मा अपनी सर्वज्ञता उनके अर्पण कर देता है, हम अपनी अल्पज्ञता उनके अर्पण करते हैं। उनकी सर्वज्ञताकी तरफ खयाल करो, अपनी अल्पज्ञताकी तरफ खयाल करो। तब तो तुमने उनको ज्ञानसे तौला, सर्वज्ञतासे तौला। तुमने ऐश्वर्यसे तौला तो क्या तौला? यह तो सब नाशवान्

और मिथ्या पदार्थ हैं। तुम भगवान्‌को कुछ नहीं समझे। उसको आत्मासे तौलना चाहिये था। तो मनुष्य जब इस प्रकार समझ जाता है, तब वह परमात्माको छोड़कर और किसीसे प्रेम नहीं करता। वह ऐश्वर्यको देखकर मोहित नहीं होता। वह समझता है—यह स्वप्नवत् मायामात्र है, कुछ भी नहीं है। परमात्मा ऐसे प्रेमी कि जो उनसे प्रेम करता है, उसके लिये वे बिक जाते हैं। वे सब कुछ दे देते हैं। प्रेमके बदलेमें अपने-आपको अर्पण कर देते हैं। व्यक्तिका प्रेम पाकर उसके बदलेमें भगवान् अपने-आपको समर्पण कर दें, कितनी बड़ी प्रीति! कितनी बड़ी उदारता है।

दयाकी बात

यदि हम यह उदाहरण दें कि भगवान् दयाके सागर हैं तो यह उदाहरण भी नीचे दरजेका है, क्योंकि सागर भी सीमावाला है। भगवान्‌की दयाकी कोई सीमा नहीं। सारी दुनियामें जो दया है, वह उस दयासागरकी एक बूँद है, यह उदाहरण भी ठीक नहीं है। उदाहरण उसके लिये है ही नहीं। भगवान् कहते हैं, मुझको दयालु

मान ले तो परम शान्ति मिल जाय। तो दयाके तत्त्वको हमलोग समझे ही नहीं।

जब हम यह मानते हैं कि हम उसके लायक नहीं, इतना तो ठीक है। पर जब हम उसके साथ यह मान लेते हैं कि भगवान्‌के दर्शन हमारे लिये असम्भव हैं तो निराश हो बैठते हैं। निराश हो जाना उनकी असीम कृपाके विषयमें ठीक-ठीक न समझना ही है। यदि हम यह समझते हैं कि भगवान् बड़े भारी दयालु हैं, हमारे अवगुणोंकी तरफ देखते ही नहीं तो फिर हमारे हृदयमें निराशा कभी आ ही नहीं सकती। भगवान् अपने विरदकी तरफ देख करके दर्शन देते हैं। इस तत्त्वरहस्यको यदि समझते तो कभी हम निराश नहीं होते। भगवान् तो इतने दयालु हैं कि हम इतना अपराध करते हैं, तो भी वे उसका दण्ड नहीं देते। यही दण्ड देते हैं कि उनके दर्शन नहीं होते, इसे ही भले दण्ड मान लो। जब भगवान् हमारे अवगुणोंकी तरफ खयाल ही नहीं करते हैं तो हम यह क्यों कहें कि हमारे अवगुणोंकी तरफ देखकर भगवान् दर्शन नहीं देंगे। भगवान् तो हमारे अवगुणोंकी तरफ खयाल ही नहीं

करते और हम उसको कायम करते हैं कि भगवान् हमारे अवगुणोंकी तरफ खयाल करते हैं। तो फिर भगवान् दयालु कहाँ रहे ? हम भगवान्‌को जब परम दयालु समझ जायँगे, तब हम उनके विरदपर हिम्मत रखेंगे और विश्वास रखेंगे कि हमको भगवान्‌का अवश्य दर्शन होगा। ऐसा हमारे दिलमें जब विश्वास होगा तब हम दर्शनोंसे कभी वंचित नहीं रहेंगे। भगवान् कितने दयालु हैं, हम समझे ही कहाँ! भगवान्‌को दयालु मानकर भी हम दर्शनोंसे वंचित रहते हैं तो दयाके प्रभावको कुछ भी नहीं समझे। हमने वास्तवमें भगवान्‌को दयालु समझा ही नहीं। भगवान् पात्रको तो दर्शन देते ही हैं यह तो नीति ही है, इसमें कौन-सी आश्चर्यकी बात है। जो जिज्ञासु होता है, श्रद्धालु होता है, उसको भगवान् दर्शन देते हैं। जो प्रेमी होता है उसको दर्शन देते हैं, यह न्याय ही है। भगवान् तो एक प्रकारसे कोई कैसा ही नीच अथवा पापी क्यों नहीं हो, उसकी तरफ नहीं देख करके अपात्रको भी दर्शन देते हैं। कुपात्रको भी दर्शन देते हैं। कैसा भी कुपात्र और नीच क्यों न हो। केवल

यह मानना है कि भगवान् सबके सुहृद् हैं, बिना कारण ही दया करनेवाले, प्रेम करनेवाले हैं।

हम यदि यह मानें कि हम पात्र नहीं हैं, इसलिये भगवान् हमको दर्शन नहीं देते तो 'भगवान् बिना ही कारण दया करनेवाले, प्रेम करनेवाले हैं', उनके इस सुहृद्भावको हम कहाँ समझे? हम तो यही समझे कि हेतुको लेकर भगवान् दया करते हैं। वास्तवमें वे तो हेतुरहित दया करनेवाले हैं। हमें यह मनुष्यका शरीर मिला यह तो मात्र उनकी अहैतुकी कृपाका परिणाम है। क्या इसे हमारे आचरणोंको देखकर भगवान्ने दिया? भगवान् प्रजाजनोंको उपदेश देते हुए स्वयं कहते हैं—

कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

कभी दया करके भगवान् बिना ही कारण, भगवान् प्रेमी हैं, दयालु हैं, इसलिये दर्शन देते हैं, अपने विरदकी ओर देखकर। यदि जीवोंकी तरफ देखकर विचार किया जाय तो मनुष्योंकी सृष्टि ही नहीं होनी चाहिये। मनुष्योंकी सृष्टि होती है, वह भगवान् दया करके मनुष्य

बनाते हैं। आचरणोंकी तरफ देख करके तो मनुष्यका शरीर मिलना सम्भव ही नहीं है। पर भगवान् देखते हैं कि क्या करें सबको मौका तो देना ही चाहिये, सबको ही मौका देते हैं। कुपात्र हो चाहे अपात्र हो।

हमको तो यह बात प्रतीत होती है जो भगवान्‌को एक प्रकारसे नहीं चाहता है, उसको भी भगवान् चाहते हैं। भगवान् तो दर्शन देनेके लिये लालायित रहते हैं। केवल निमित्तमात्र बनाते हैं। कोई बहाना मिल जाय, कोई निमित्त बन जाय। इतना ही हम हृदयसे मान लें कि 'भगवान् पात्र-कुपात्र नहीं देखते, बड़े दयालु हैं।' उनके हृदयमें दया आ जाती है। एक माता सबको मेवा-मिष्टान्न देती है, एक लड़का कुपात्र और बदमाश है, उसको भी दिये बिना उसका हृदय नहीं मानता, किंतु उस लड़केके सामने रख दे और लड़का क्रोधमें आकर फेंक दे तो माँ क्या करे। इसी प्रकार भगवान् दया करके अपना दर्शन देनेको तैयार हैं, किंतु हम दर्शन जो नहीं पा रहे हैं यह उसका दण्ड है कि हम उसकी दयाके रहस्यको नहीं जानते। दयाके रहस्यको जानते तो हम

अपने आचरणकी तरफ क्यों देखते, भगवान्‌के विरदकी तरफ ही देखते और विरदकी तरफ देखते तो भगवान् मिले बिना कैसे रह सकते? हमारेमें ही कमी है कि हम भगवान्‌के प्रभावको तो जानते ही नहीं अपितु उन्हें निर्दयी मानते हैं। निर्दयी माननेका यह अभिप्राय है कि यदि दयालु मानते तो उनकी दयापर मुग्ध हो जाते कि कैसी उनकी अपार दया है?

यह देखा जाता है कि एक आदमी भगवान्‌का दर्शन नहीं चाहता, उसको भी भगवान् दर्शन देते हैं। फिर भी वह स्वीकार नहीं करे तो भगवान् क्या करें। दुर्योधन क्या भगवान्‌के दर्शनोंका पात्र था? भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी अपने अवतारके रूपमें दुर्योधनको तथा औरोंको दर्शन दे रहे थे। तब तो आप यह भी कह सकते हैं कि यह मनुष्य है या परमात्मा, कैसे समझें? किंतु दुर्योधनकी सभामें दुर्योधनको जब विश्वरूप प्रकट करके दिखलाया तब तो उसको समझना चाहिये था कि ऐसा रूप क्या कोई मनुष्य धारण कर सकता है? भगवान्‌ने अपात्रोंको भी बिना आकांक्षाके, बिना माँगके प्रकट होकर दर्शन

दिया। किंतु वह दर्शन पा करके भी यह नहीं समझा कि ये साक्षात् भगवान् हैं; दर्शन पाकर भी परमात्माकी प्राप्तिसे वंचित रहा। तो भगवान्‌की दयामें तो कोई कमी नहीं।

विष देनेवाली पूतनाको भी भगवान्‌ने मुक्ति दी थी कि मेरे साथमें इसका किसी प्रकार भी सम्बन्ध हो गया तो इसकी तरफ क्या देखूँ, मैं अपनी तरफ देखूँ। अपने कर्तव्यकी तरफ देखूँ तो भगवान् भक्तके कर्तव्यकी तरफ नहीं देखते। दूसरे दुष्टोंके कर्तव्यकी तरफ भी नहीं देखते तो फिर भक्तके कर्तव्यकी तरफ देखेंगे ही क्या, अपने विरदकी तरफ ही देखते हैं और अपने विरदकी तरफ जब देखते हैं तो हम सभी पात्र हो जाते हैं। किंतु भगवान्‌की दया हम स्वीकार नहीं करें, तब भगवान्‌का क्या उपाय ? भगवान् परम दयालु हैं इतनी बात तो हमको स्वीकार करनी चाहिये। जब हम भगवान्‌की दयाकी तरफ देखेंगे तो विह्वल हो जायँगे। फिर भगवान्‌के बिना हम रह नहीं सकेंगे।

बच्चा माँकी दयाके प्रभावको थोड़ा जानता है। छोटा बच्चा एक-दो सालका माँके बिना रहना नहीं चाहता।

माँ उसको छोड़कर चली जाय तो वह रोता ही रहता है। उसका उपाय तो नहीं, सिवा रोनेके। किंतु हमलोग तो रोते भी नहीं। माँका प्रभाव जितना लड़का जानता है कि माँ मेरी है, वह बड़ी दयालु है, मुझसे बड़ा प्रेम करती है, इस प्रकारसे जाननेवाला छोटा बच्चा माँके वियोगको बर्दाश्त नहीं कर सकता। किंतु हमलोग भगवान्‌के वियोगको बर्दाश्त कर रहे हैं, इसीलिये यह वियोग है।

हमलोगोंको भगवान्‌के दर्शन होनेमें जो विलम्ब हो रहा है, भगवान्‌की सुहृदताके तत्त्वको न जाननेका ही यह परिणाम है। भगवान् सबके सुहृद् हैं, यदि इस प्रकार हम जाननेवाले होते तो विलम्ब नहीं होता। जब कि भगवान्‌में श्रद्धा, प्रेम न रखनेवाले पुरुष हैं, भगवान्‌को नहीं माननेवाले पुरुष हैं, भगवान्‌की दयाके तत्त्व-रहस्यको नहीं जाननेवाले पुरुष हैं, भगवान्‌के प्रेमके तत्त्वको नहीं जाननेवाले पुरुष हैं, भगवान्‌को जो नहीं चाहते हैं, उनको भी भगवान् दर्शन देनेके लिये प्रयत्न करते हैं। जो चाहते हैं, उनके लिये क्यों नहीं प्रयत्न करेंगे? उत्तंक नहीं जानता था कि ये भगवान् हैं, ऐसा नहीं समझा था, तब भी भगवान्‌ने समझाया कि 'मैं साक्षात् भगवान् हूँ? मुझको शाप मत देना। शाप देनेसे

आपकी गुरुभक्ति नष्ट हो जायगी। गुरुकी सेवाका मिलनेवाला फल नष्ट हो जायगा। मैं साक्षात् परमेश्वर हूँ, मुझको शाप लगता नहीं। मैंने इस समय मनुष्यके रूपमें अवतार लिया है, यह उसको भगवान् कहते हैं। मैं साक्षात् पूर्ण ब्रह्म परमात्मा जब-जब संसारमें विप्लव होता है, तब-तब अवतार लेता हूँ। मैं कच्छप, मत्स्य, वराहके रूपमें प्रकट होता हूँ। देवयोनि, मनुष्ययोनि, पशुयोनिमें आवश्यकतानुसार प्रकट होता हूँ। वर्तमानमें मनुष्य-योनिमें प्रकट हुआ हूँ।' तब उसने कहा—'यदि आप साक्षात् परमात्मा हैं तो मुझे अपना विश्वरूप दिखलाइये।' भगवान्‌ने अपना विश्वरूप उसको दिखलाया। किंतु भगवान्‌ने ही तो उसको परिचय दिया। भगवान्‌ने सोचा कि इसने आत्माके कल्याणके लिये बड़ी भारी गुरुभक्ति की है, सो आत्माका कल्याण होना ही चाहिये। भगवान्‌ने दर्शन देकर आत्माका उद्धार किया। वहाँ उसकी तरफसे भगवान्‌की माँग नहीं थी। भगवान्‌को जानता ही नहीं। माँग कैसे करे ? इस प्रकार भगवान् जब खोज-खोज करके उद्धार करते हैं, तब जो भगवान्‌को प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, उसको भगवान् दर्शन नहीं देंगे तो

किसको देंगे? कोई कैसा ही पापी क्यों नहीं हो उसके सारे पाप '**भगवान् सुहृद् हैं**' यह जाननेसे ही नष्ट हो जाते हैं। जैसे कोई गुफामें कितने ही वर्षोंका अँधेरा क्यों नहीं हो, वहाँ बिजलीकी रोशनी होनेके साथ ही अन्धकार भाग जाता है। इसी प्रकार कितना ही अज्ञान हो, ज्ञान होनेके साथ ही अन्धकार मिट जाता है। पापोंका कितना ही ढेर हो, ज्ञानाग्निसे सब दग्ध हो जाता है—

'ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥'

(गीता ४। १९)

'ऐसे उस ज्ञानरूप अग्निद्वारा भस्म हुए कर्मोंवाले पुरुषको ज्ञानीजन भी पण्डित कहते हैं।' साथ ही—

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि॥

(गीता ४। ३६)

—भगवान्ने अर्जुनसे कहा—'यदि तू सब पापियोंसे भी अधिक पाप करनेवाला है तो भी ज्ञानरूप नौकाद्वारा निःसंदेह सम्पूर्ण पापोंको अच्छी प्रकार तर जायगा।'

किंतु जान-बूझकर पाप नहीं करना चाहिये। पिछले

जितने पाप हैं उनके लिये हमको यह समझना चाहिये कि भगवान् अकारण ही दया-प्रेम करनेवाले हैं। उनकी कृपासे सब पापोंका नाश हो जायगा। भगवान्में अपार दया है। इस बातको माननेके बाद कोई भी पापी उनकी दयासे वंचित नहीं रह सकता। हम तो पापी हैं, किंतु भगवान् तो निर्दयी नहीं। हम अपनेको पापी मानकर भगवान्को निर्दयी मानते हैं यह अपराध करते हैं। अपने पापोंको लेकर यह मानते हैं कि हमारा उद्धार होना कठिन है, असम्भव है, नहीं हो सकता। ऐसा समझना तो भगवान्की दयाका तिरस्कार करना है। अपने घरमें मामूली अन्धकार है, वह सूर्यसे भी दूर नहीं हो सकता, यह मानना मूर्खता है। यह अन्धकार तबतक ही है जबतक सूर्यभगवान् उदय नहीं होते। सूर्यभगवान् सबपर दया करके रोज उदय होते हैं। रात्रिमें हमको यह विचार करना चाहिये कि आज सूर्यभगवान् उदय होंगे और यह अन्धकार सूर्यके उदय होनेके साथ ही एकदम दूर हो जायगा। हम प्रकाशमें जो काम करना चाहते हैं, वह सूर्यकी रोशनीमें करें। प्रातःकाल रोशनी अवश्य

होगी। सूर्यभगवान् यह नहीं देखते कि मैं किसके लिये उदय होऊँ, किसके लिये नहीं। वे तो उदय हो ही जाते हैं। उदय होनेपर भी उल्लूको नहीं दीखता। उसके नेत्र बंद हो जाते हैं। तो इसमें सूर्यका कोई दोष नहीं है। भगवान्‌की दया सूर्यके प्रकाशके समान उदय हुई है, उससे यदि हम आँख मींच लेते हैं तो हमको अन्धकार-ही-अन्धकार दीखता है। हम दयासे लाभ नहीं उठावें तो यह हमारी मूर्खता है। दयाके सामने तो दूसरेका छोटा-बड़ा अपराध कोई चीज नहीं है। हमारे कर्तव्यसे ही हमारा उद्धार होता है तो फिर दया क्या चीज है! होता है भगवान्‌की दयासे। हम समझते हैं, हमारा उद्धार हमारे कर्तव्यसे होगा, हम अभी उस दरजेपर नहीं पहुँचे हैं। उस दरजेपर पहुँचेंगे तब हमारा कल्याण होगा। तो जैसी हमारी मान्यता है, वैसा ही हमको फल मिलता है। जब पात्र होंगे तभी कल्याण होगा। जब हम यह समझते कि भगवान्‌की दया पात्र-कुपात्रको नहीं देखती तो हम उसकी दयासे वंचित क्यों रहते? भगवान्‌की दयाके प्रभावको हम नहीं मानते हैं,

बल्कि इतने दयालु भगवान्‌को निर्दयी समझते हैं। यह एक प्रकारका अपराध है।

परम दयालु परमात्माको निर्दयी समझना क्या? कि हम दयाके पात्र नहीं हैं, इसलिये वंचित हैं। भगवान्‌के आगे तो सभी दयाके पात्र हैं। हम मानते हैं कि हम दयाके पात्र नहीं, इसीलिये अपात्र हैं। भगवान्‌ने तो निर्णय किया नहीं कि तुम दयाके पात्र नहीं हो। भगवान्‌की सबपर अपार दया है, उसने तो दयाका भण्डार खोले रखा है। कोई भाई सदाव्रत बाँटता है, खुले दरबारमें। एक आदमी कहता है, मैं वहाँ जाकर क्या करूँ। इसपर दूसरेने कहा क्यूँ नहीं गये? वह बोला—'वे तो भूखोंको देते हैं, मुझको नहीं मिलेगा। तुमने जाकर देखा? मुझको विश्वास है, वहाँ मिलेगा नहीं। तो तुमने उस दाताको निर्दयी समझा। वहाँ तो खुला दरबार है कोई ले आवे। तुमने ऐसा क्यों मान लिया कि वहाँ मिलेगा नहीं? इसपर उसने कहा—मैंने लोगोंसे पूछा था और पता चला कि वहाँ तो भिखारियोंको मिलता है तो मैं उसका पात्र नहीं।

भगवान्‌के आगे तो सभी भिखारी हैं, सभी पात्र हैं। भगवान् अपनी दृष्टिसे सभीको पात्र समझते हैं।

जो कोई निराकारका उपासक होता है, उसको भगवान् दर्शन देनेके लिये बाध्य नहीं हैं, यह बात ठीक है, किंतु भक्ति करनेवालेके लिये तो वे बाध्य हैं—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥

(गीता ११।५४)

(भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—) 'हे श्रेष्ठ तपवाले अर्जुन! अनन्य भक्ति करके तो इस प्रकार चतुर्भुजरूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये और तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।'

भक्तके लिये तो बाध्य हैं, निर्गुण-निराकारवालोंको दर्शन देनेके लिये बाध्य नहीं हैं, किन्तु यह तो नहीं कि उनको दर्शन नहीं देते। यह भी नहीं, जो नहीं चाहता है उसे नहीं देते हैं। जो कुपात्र है, अपात्र है उसका उद्धार नहीं करते, ऐसी बात तो नहीं है।

भगवान् तो बिना ही कारण सबपर दया और प्रेम करनेवाले हैं—ऐसा हमलोग कहते ही हैं किंतु मानते नहीं, जानते नहीं। माननेसे ही वह आगे आकर जानता है। पहले मान लें, किंतु हम तो ऐंठ रखते हैं कि ऐसा क्यों मानें। भगवान्‌को भगवान् माननेमें भी हमको संकोच होता है, शर्म होती है। माननेसे आगे जाकर जानेंगे। तुमको स्वीकार कर लेना चाहिये। स्वीकार करनेके योग्य तो भगवान् हैं ही। किंतु हम तो स्वीकार ही नहीं करते।

जैसे कन्याके लिये वर है, वह उसके लिये वरण करने योग्य है, पति बनाने योग्य है, पति मानने योग्य है, किंतु कन्या पति बनाना नहीं चाहती उसे, स्वामीके योग्य नहीं मानती तो वर क्या उपाय करे? तो संसारमें स्वामी बनाने योग्य एकमात्र परमात्मा ही है। उसको भी हम स्वामी मानना नहीं चाहते, तब हमारी दुर्गति हो तो इसमें स्वामीका क्या दोष है? योग्य वरको भी जब कन्या स्वीकार नहीं करे और वह अविवाहिता रहे तो उस कन्याकी बेसमझी है। तो भगवान्‌को स्वामी मानना चाहिये। भले ही स्वामी न मानो किंतु उनका

अस्तित्वमात्र माननेसे ही मनुष्यको बहुत लाभ हो जाता है। भगवान् है, निश्चय है, यह माननेसे भी बहुत लाभ हो जाता है और वह स्वामी बनानेके योग्य है तो फिर जो उन्हें याद करता है, उनका ध्यान करता है, उसके कल्याणमें शंका ही क्या है। गायत्रीमन्त्रका भी यह सिद्धान्त है, उसमें '**वरेण्यम्**' उसका यह अर्थ है जो मैंने बतलाया है। भगवान्‌को इस शब्दका अर्थ मान लिया वह पात्र हो गया।

भगवान्‌को अपना स्वामी स्वीकार कर ले। जो भगवान्‌को स्वामी स्वीकार नहीं करता है, उसके कल्याणके लिये भी भगवान् चेष्टा करते हैं, जैसे महात्मा लोग। उन महात्माओंको जो उन्हें महात्मा नहीं मानते हैं, तो भी वे इतने दयालु होते हैं कि मुझको महात्मा न माने, अन्य किसीको भी मानकर अपनी आत्माका उद्धार तो कर ले। दूसरेको महात्मा मानकर अपनी आत्माका कल्याण कर लेता है तो महात्मा खुश होता है। जैसे कोई कहता है कि तुम राम-नामको भजो, उससे तुम्हारा कल्याण हो जायगा, किंतु उसकी बातपर विश्वास नहीं है। उसका विश्वास महात्मा गाँधीजीपर है

तो वह कहता है—गाँधीजी राम-नामकी उपासना करते थे, भक्त थे। देखो, उन्होंने खुद कहा है—'राम-नामके समान कुछ नहीं है।' गाँधीजीको महात्मा मानकर उनका अनुकरण करो, राम-नामका भजन करो। गाँधीजीके सिद्धान्तको मानकर, उनको महात्मा मानकर, गुरु मानकर राम-नामकी उपासना करने लग जाता है तो महात्मा बड़े खुश होते हैं कि इसने रास्ता अच्छा पकड़ लिया, इसका कल्याण होनेकी सम्भावना है। किसी प्रकारसे जीवोंका कल्याण हो। महात्मा बड़े दयालु होते हैं। जैसे भगवान् दयालु हैं, वैसे ही उनके अनुयायी भी भक्त, साधु-महात्मा दयालु होते हैं। इसीलिये भगवान् कहते हैं—ऐसे दयालु मुझे प्रिय हैं—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

* * * *

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

(गीता १२।१३-१४)

'जो सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित एवं स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है, वह मेरेमें मन-बुद्धि अर्पण करनेवाला मेरा भक्त मुझे प्रिय है।'

'वह मुझे प्रिय है'—यह भाव भगवान्का है एवं भक्तोंका भी यही भाव है। इसलिये उच्चकोटिके भक्त भी बड़े खुश होते हैं। यदि कोई आदमी भगवान्की भक्ति करता है तो उसको देखकर वे बड़े प्रसन्न होते हैं। वे कहते हैं—किसीको गुरु माने, महात्मा माने, किंतु भक्ति तो भगवान्की ही करता है ना। हमारे स्वामीकी करता है। इसी प्रकार किसीकी भी बात मानकर भगवान्की भक्ति करे, भगवान्का गुमाश्ता तो यही समझता है कि हमारे मालिकका भक्त बन गया। वह तो दलाल बनकर कोशिश करता है कि भगवान्की भक्ति करो। दूसरा दलाल पहुँच गया और उसको भगवान्की भक्तिमें लगा दिया तो वह प्रसन्न होता है। यह नहीं कि मेरे द्वारा ही होना चाहिये। दलाल कोई भी हो, वह भक्ति तो भगवान्की करता है। इस प्रकार किसीकी भी बात मानकर भगवान्की भक्ति अवश्य करना है।

॥ श्रीहरिः ॥

महात्मा किसे कहते हैं?

महात्मा शब्दका अर्थ और प्रयोग

'महात्मा' शब्दका अर्थ है 'महान् आत्मा' यानी सबका आत्मा ही जिसका आत्मा है। इस सिद्धान्तसे 'महात्मा' शब्द वस्तुतः एक परमेश्वरके लिये ही शोभा देता है, क्योंकि सबके आत्मा होनेके कारण वे ही महात्मा हैं। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् स्वयं कहते हैं—

'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।'

(१०।२०)

'हे अर्जुन! मैं सब भूतप्राणियोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा हूँ।'

परन्तु जो पुरुष भगवान्‌को तत्त्वसे जानता है अर्थात् भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है वह भी महात्मा ही है, अवश्य ही ऐसे महात्माओंका मिलना बहुत ही दुर्लभ है। गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

(७।३)

'हजारों मनुष्योंमें कोई ही मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें कोई ही पुरुष (मेरे परायण हुआ) मुझको तत्त्वसे जानता है।'

जो भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है, उसके लिये सम्पूर्ण भूतोंका आत्मा उसीका आत्मा हो जाता है; क्योंकि परमात्मा सबके आत्मा हैं और वह भक्त परमात्मामें स्थित है। इसलिये सबका आत्मा ही उसका आत्मा है। इसके सिवा '**सर्वभूतात्मभूतात्मा**' (गीता ५।७), यह विशेषण भी उसीके लिये आया है। वह पुरुष सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंको अपने आत्मामें और आत्माको सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंमें देखता है। उसके ज्ञानमें सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंके और अपने आत्मामें कोई भेद-भाव नहीं रहता।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥

(ईश० ६)

'जो समस्त भूतोंको अपने आत्मामें और समस्त भूतोंमें अपने आत्माको ही देखता है, वह फिर किसीसे घृणा नहीं करता।'

सर्वत्र ही उसकी आत्म-दृष्टि हो जाती है, अथवा यों कहिये कि उसकी दृष्टिमें एक विज्ञानानन्दघन वासुदेवसे भिन्न और कुछ भी नहीं रहता। ऐसे ही महात्माओंकी प्रशंसामें भगवान्‌ने कहा है—

'वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥'

(गीता ७। १९)

'सब कुछ वासुदेव ही हैं, इस प्रकार (जाननेवाला) महात्मा अति दुर्लभ है।'

खेदकी बात है कि आजकल लोग स्वार्थवश किसी साधारण-से-साधारण मनुष्यको भी महात्मा कहने लगते हैं। 'महात्मा' या 'भगवान्' शब्दका प्रयोग वस्तुतः बहुत समझ-सोचकर किया जाना चाहिये। वास्तवमें महात्मा तो वे ही हैं जिनमें महात्माओंके लक्षण और आचरण हों। ऐसे महात्माका मिलना बहुत ही दुर्लभ है, यदि मिल भी जायँ तो उनको पहचानना तो असम्भव-सा ही है,

'**महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च**' (नारदभक्तिसूत्र ३९)। 'महात्माका संग दुर्लभ, दुर्गम और अमोघ है।'

साधारणतया उनकी वही पहचान सुनी जाती है कि उनका संग अमोघ होनेके कारण उनके दर्शन, भाषण और आचरणोंसे मनुष्योंपर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। ईश्वर-स्मृति, विषयोंसे वैराग्य, सत्य, न्याय और सदाचारमें प्रीति, चित्तमें प्रसन्नता तथा शान्ति आदि सद्‌गुणोंका स्वाभाविक ही प्रादुर्भाव हो जाता है। इतनेपर भी बाहरी आचरणोंसे तो यथार्थ महात्माओंको पहचानना बहुत ही कठिन है; क्योंकि पाखण्डी मनुष्य भी लोगोंको ठगनेके लिये महात्माओं-जैसा स्वाँग रच सकता है। इसलिये परमात्माकी पूर्ण दयासे ही महात्मा मिलते हैं और उन्हींकी दयासे उनको पहचाना भी जा सकता है।

महात्माओंके लक्षण

सर्वत्र समदृष्टि होनेके कारण उनमें राग-द्वेषका अत्यन्त अभाव हो जाता है, इसलिये उनको प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें हर्ष-शोक नहीं होता। सम्पूर्ण भूतोंमें आत्म-बुद्धि होनेके कारण अपने आत्माके सदृश ही

उनका सबमें प्रेम हो जाता है, इससे अपने और दूसरोंके सुख-दुखमें उनकी समबुद्धि हो जाती है और इसीलिये वे सम्पूर्ण भूतोंके हितमें स्वाभाविक ही रत होते हैं। उनका अन्तःकरण अति पवित्र हो जानेके कारण उनके हृदयमें भय, शोक, उद्वेग, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दोषोंका अत्यन्त अभाव हो जाता है। देहमें अहंकारका अभाव हो जानेसे मान, बड़ाई और प्रतिष्ठाकी इच्छाकी तो उनमें गन्धमात्र भी नहीं रहती। शान्ति, सरलता, समता, सुहृदता, शीतलता, सन्तोष, उदारता और दयाके तो वे अनन्त समुद्र होते हैं। इसीलिये उनका मन सर्वदा प्रफुल्लित, प्रेम और आनन्दमें मग्न और सर्वथा शान्त रहता है।

महात्माओंके आचरण

देखनेमें उनके बहुत-से आचरण दैवी सम्पदावाले सात्त्विक पुरुषोंके-से होते हैं, परन्तु सूक्ष्म विचार करनेपर दैवी सम्पदावाले सात्त्विक पुरुषोंकी अपेक्षा उनकी अवस्था और उनके आचरण कहीं महत्त्वपूर्ण होते हैं। सत्यस्वरूपमें स्थित होनेके कारण उनका प्रत्येक आचरण

सदाचार समझा जाता है। उनके आचरणोंमें असत्यके लिये कोई स्थान ही नहीं रह जाता। अपना व्यक्तिगत किंचित् भी स्वार्थ न रहनेके कारण उनके आचरणोंमें किसी भी दोषका प्रवेश नहीं हो सकता, इसलिये उनके सम्पूर्ण आचरण दिव्य समझे जाते हैं। वे सम्पूर्ण भूतोंको अभयदान देते हुए ही विचरते हैं। वे किसीके मनमें उद्वेग करनेवाला कोई आचरण नहीं करते। सर्वत्र परमेश्वरके स्वरूपको देखते हुए स्वाभाविक ही तन, मन और धनको सम्पूर्ण भूतोंके हितमें लगाये रहते हैं। उनके द्वारा झूठ, कपट, व्यभिचार, चोरी आदि दुराचार तो हो ही नहीं सकते। यज्ञ, दान, तप, सेवा आदि जो उत्तम कर्म होते हैं, उनमें भी अहंकारका अभाव होनेके कारण आसक्ति, इच्छा, अभिमान और वासना आदिका नाम-निशान भी नहीं रहता। स्वार्थका त्याग होनेके कारण उनके वचन और आचरणोंका लोगोंपर अद्भुत प्रभाव पड़ता है। उनके आचरण लोगोंके लिये अत्यन्त हितकारी और प्रिय होनेसे लोग सहज ही उनका अनुकरण करते हैं। श्रीगीतामें भगवान् कहते हैं—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥
(३। २१)

'श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करते हैं, दूसरे लोग भी उसीके अनुसार बर्तते हैं, वे जो कुछ प्रमाण कर देते हैं, लोग भी उसके अनुसार बर्तते हैं।'

उनका प्रत्येक आचरण सत्य, न्याय और ज्ञानसे पूर्ण होता है, किसी समय उनका कोई आचरण बाह्यदृष्टिसे भ्रमवश लोगोंको अहितकर या क्रोधयुक्त मालूम हो सकता है किन्तु विचारपूर्वक तत्त्वदृष्टिसे देखनेपर वस्तुतः उस आचरणमें भी दया और प्रेम ही भरा हुआ मिलता है और परिणाममें उससे लोगोंका परम हित ही होता है। उनमें अहंता-ममताका अभाव होनेके कारण उनका बर्ताव सबके साथ पक्षपातरहित, प्रेममय और शुद्ध होता है। प्रिय और अप्रियमें उनकी समदृष्टि होती है। वे भक्तराज प्रह्लादकी भाँति आपत्तिकालमें भी सत्य, धर्म और न्यायके पक्षपर ही दृढ़ रहते हैं। कोई भी स्वार्थ या भय उन्हें सत्यसे नहीं डिगा सकता।

एक समय केशिनीनाम्नी कन्याको देखकर प्रह्लाद-पुत्र विरोचन और अंगिरा-पुत्र सुधन्वा उसके साथ विवाह करनेके लिये परस्पर विवाद करने लगे। कन्याने कहा कि 'तुम दोनोंमें जो श्रेष्ठ होगा, मैं उसीके साथ विवाह करूँगी।' इसपर वे दोनों ही अपनेको श्रेष्ठ बतलाने लगे। अन्तमें वे परस्पर प्राणोंकी बाजी लगाकर इस विषयमें न्याय करानेके लिये प्रह्लादजीके पास गये। प्रह्लादजीने पुत्रकी अपेक्षा धर्मको श्रेष्ठ समझकर यथोचित न्याय करते हुए अपने पुत्र विरोचनसे कहा कि 'सुधन्वा तुझसे श्रेष्ठ है, इसके पिता अंगिरा मुझसे श्रेष्ठ हैं और इस सुधन्वाकी माता तेरी मातासे श्रेष्ठ है, इसलिये यह सुधन्वा तेरे प्राणोंका स्वामी है।' यह न्याय सुनकर सुधन्वा मुग्ध हो गया और उसने कहा, 'हे प्रह्लाद! पुत्रप्रेमको त्यागकर तुम धर्मपर अटल रहे, इसलिये तुम्हारा यह पुत्र सौ वर्षतक जीवित रहे।'

श्रेयान्सुधन्वा त्वत्तो वै मत्तः श्रेयांस्तथाङ्गिराः।
माता सुधन्वनश्चापि मातृतः श्रेयसी तव।
विरोचन सुधन्वायं प्राणानामीश्वरस्तव॥

पुत्रस्नेहं परित्यज्य यस्त्वं धर्मे व्यवस्थितः।
अनुजानामि ते पुत्रं जीवत्वेष शतं समाः॥

(महा० सभा० ६७। ८७-८८)

महात्मा पुरुषोंका मन और उनकी इन्द्रियाँ जीती हुई होनेके कारण न्यायविरुद्ध विषयोंमें तो उनकी कभी प्रवृत्ति ही नहीं होती। वस्तुतः ऐसे महात्माओंकी दृष्टिमें एक सच्चिदानन्दघन वासुदेवसे भिन्न कुछ भी नहीं होनेके कारण यह सब भी लीलामात्र ही है, तथापि लोकदृष्टिमें भी उनके मन, वाणी, शरीरसे होनेवाले आचरण परम पवित्र और लोकहितकर ही होते हैं। कामना, आसक्ति और अभिमानसे रहित होनेके कारण उनके मन और इन्द्रियोंद्वारा किया हुआ कोई भी कर्म अपवित्र या लोकहानिकर नहीं हो सकता। इसीसे वे संसारमें प्रमाणस्वरूप माने जाते हैं।

महात्माओंकी महिमा

ऐसे महापुरुषोंकी महिमाका कौन बखान कर सकता है? श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, सन्तोंकी वाणी और आधुनिक महात्माओंके वचन इनकी महिमासे भरे हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजीने तो यहाँतक कह दिया है कि भगवान्‌को प्राप्त हुए भगवान्‌के दास भगवान्‌से भी बढ़कर हैं—

मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा।
राम ते अधिक राम कर दासा॥
राम सिंधु घन सज्जन धीरा।
चंदन तरु हरि संत समीरा॥
सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥

ऐसे महात्मा जहाँ विचरते हैं, वहाँका वायुमण्डल पवित्र हो जाता है, श्रीनारदजी कहते हैं—

तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि। (नारद भ० ६९)

'वे अपने प्रभावसे तीर्थोंको (पवित्र करके) तीर्थ

बनाते हैं, कर्मोंको सुकर्म बनाते हैं और शास्त्रोंको सत्-शास्त्र बना देते हैं।' वे जहाँ रहते हैं, वही स्थान तीर्थ बन जाता है या उनके रहनेसे तीर्थका तीर्थत्व स्थायी हो जाता है; वे जो कर्म करते हैं, वे ही सुकर्म बन जाते हैं, उनकी वाणी ही शास्त्र है अथवा वे जिस शास्त्रको अपनाते हैं, वही सत्-शास्त्र समझा जाता है।

शास्त्रमें कहा है—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिँ-
ल्लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥

(स्कन्द पु० माहे० कौ० खं० ४५।१४०)

'जिसका चित्त अपार संवित् सुखसागर परब्रह्ममें लीन है, उससे कुल पवित्र, माता कृतार्थ और पृथ्वी पुण्यवती हो जाती है।'

धर्मराज युधिष्ठिरने भक्तराज विदुरजीसे कहा था—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता॥

(श्रीमद्भा० १।१३।१०)

'हे स्वामिन्! आप-सरीखे भगवद्भक्त स्वयं तीर्थरूप हैं। (पापियोंके द्वारा कलुषित हुए) तीर्थोंको आपलोग अपने हृदयमें स्थित भगवान् श्रीगदाधरके प्रभावसे पुनः तीर्थत्व प्राप्त करा देते हैं।'

महात्माओंका तो कहना ही क्या है, उनकी आज्ञा पालन करनेवाले मनुष्य भी परमपदको प्राप्त हो जाते हैं। भगवान् स्वयं भी कहते हैं कि जो किसी प्रकारका साधन न जानता हो, वह भी महान् पुरुषोंके पास जाकर उनके कहे अनुसार चलनेसे मुक्त हो जाता है।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

(गीता १३। २५)

'परन्तु दूसरे इस प्रकार मुझको तत्त्वसे न जानते हुए दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले महापुरुषोंसे सुनकर ही उपासना करते हैं। वे सुननेके परायण हुए पुरुष भी मृत्युरूप संसार-सागरसे निःसन्देह तर जाते हैं।'

महात्मा बननेके उपाय

इसका वास्तविक उपाय तो परमेश्वरके अनन्यशरण होना ही है, क्योंकि परमेश्वरकी कृपासे ही यह पद मिलता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(१८।६२)

'हे भारत! सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही अनन्य-शरणको प्राप्त हो, उस परमात्माकी दयासे ही तू परम-शान्ति और सनातन परमधामको प्राप्त होगा।'

परन्तु इसके लिये ऋषियोंने और भी उपाय बतलाये हैं। जैसे मनुमहाराजने धर्मके दस लक्षण कहे हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(मनु० ६।९२)

'धृति, क्षमा, मनका निग्रह, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध—ये दस धर्मके लक्षण हैं।'

महर्षि पतञ्जलिने अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये (जो

कि आत्मसाक्षात्कारके लिये अत्यन्त आवश्यक है) एवं मनके निरोध करनेके लिये बहुत-से उपाय बतलाये हैं। जैसे—

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।

(योगसूत्र १। ३३)

'सुखियोंके प्रति मैत्री, दुःखियोंके प्रति करुणा, पुण्यात्माओंको देखकर प्रसन्नता और पापियोंके प्रति उपेक्षाकी भावनासे चित्त स्थिर होता है।'

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

(२। ३०)

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।

(२। ३२)

'अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह—ये पाँच यम हैं और शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान—ये पाँच नियम हैं।'

और भी अनेक ऋषियोंने महात्मा बननेके यानी परमात्माके पदको प्राप्त होनेके लिये सद्भाव और सदाचार आदि अनेक उपाय बतलाये हैं।

भगवान्ने श्रीमद्भगवद्गीताके तेरहवें अध्यायमें श्लोक ७ से ११ तक 'ज्ञान' के नामसे और सोलहवें अध्यायमें श्लोक १-२-३ में 'दैवी सम्पदा' के नामसे एवं सतरहवें अध्यायमें श्लोक १४-१५-१६ में 'तप' के नामसे सदाचार और सद्गुणोंका ही वर्णन किया है।

यह सब होनेपर भी महर्षि पतञ्जलि, शुकदेव, भीष्म, वाल्मीकि, तुलसीदास, सूरदास, यहाँतक कि स्वयं भगवान्ने भी शरणागतिको ही बहुत सहज और सुगम उपाय बताया है। अनन्यभक्ति, ईश्वरप्रणिधान, अव्यभिचारिणी भक्ति और परमप्रेम आदि उसीके नाम हैं।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८।१४)

'हे पार्थ! जो पुरुष मुझमें अनन्य चित्तसे स्थित हुआ सदा ही निरन्तर मुझको स्मरण करता है, उस मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।'

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥

(वा० रा० ६।१८।३३)

'जो एक बार भी मेरे शरण होकर 'मैं तेरा हूँ' ऐसा कह देता है, मैं उसे सर्व भूतोंसे अभय प्रदान कर देता हूँ, यह मेरा व्रत है।'

इसलिये पाठक सज्जनोंसे प्रार्थना है कि ज्ञानी, महात्मा और भक्त बननेके लिये ज्ञान और आनन्दके भण्डार सत्यस्वरूप उस परमात्माकी ही अनन्य शरण लेनी चाहिये। फिर उपर्युक्त सदाचार और सद्भाव तो अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं।

भगवान्‌की शरण ग्रहण करनेपर उनकी दयासे आप ही सारे विघ्नोंका नाश होकर भक्तको भगवत्-प्राप्ति हो जाती है। योगदर्शनमें कहा है—

'तस्य वाचकः प्रणवः', 'तज्जपस्तदर्थभावनम्',
'ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च'

(१।२७—२९)

'उसका वाचक प्रणव (ओंकार) है।' 'उसका जप

और उसके अर्थकी भावना करनी चाहिये।' 'इससे अन्तरात्माकी प्राप्ति और विघ्नोंका अभाव भी होता है।'

भगवत्-शरणागतिके बिना इस कलिकालमें संसार-सागरसे पार होना अत्यन्त ही कठिन है।

कलिजुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि सुमिरि भव उतरहु पारा॥
कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

× × ×

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(ना० पु० १।४१।११५)

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७। १४)

'कलियुगमें हरिका नाम, हरिका नाम, केवल हरिका नाम ही (उद्धार करता) है, इसके सिवा अन्य उपाय नहीं है, नहीं है, नहीं है।'

'क्योंकि यह अलौकिक (अति अद्भुत) त्रिगुणमयी

मेरी योगमाया बड़ी दुस्तर है, जो पुरुष निरन्तर मुझको ही भजते हैं, वे इस मायाको उल्लंघन कर जाते हैं यानी संसारसे तर जाते हैं।'

हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरिभजन न जाहिं।
भजिअ राम सब काम तजि अस बिचारि मन माहिं॥

महात्मा बननेके मार्गमें मुख्य विघ्न

ज्ञानी, महात्मा और भक्त कहलाने और बननेके लिये तो प्राय: सभी इच्छा करते हैं; परन्तु उसके लिये सच्चे हृदयसे साधन करनेवाले लोग बहुत ही कम हैं। साधन करनेवालोंमें भी परमात्माके निकट कोई ही पहुँचता है, क्योंकि राहमें ऐसी बहुत-सी विपद्-जनक घाटियाँ आती हैं, जिनमें फँसकर साधक गिर जाते हैं। उन घाटियोंमें 'कञ्चन' और 'कामिनी' ये दो घाटियाँ बहुत ही कठिन हैं, परन्तु इनमें भी कठिन तीसरी घाटी मान-बड़ाई और ईर्ष्याकी है। किसी कविने कहा है—

कंचन तजना सहज है, सहज त्रियाका नेह।
मान बड़ाई ईर्ष्या, दुर्लभ तजना येह॥

इन तीनोंमें भी सबसे कठिन है बड़ाई। इसीको कीर्ति, प्रशंसा, लोकैषणा आदि कहते हैं। शास्त्रमें जो तीन प्रकारकी तृष्णा (पुत्रैषणा, लौकैषणा और वित्तैषणा) बतायी गयी हैं, उन तीनोंमें लोकैषणा ही सबसे अधिक बलवान् है। इसी लोकैषणाके लिये मनुष्य धन, धाम, पुत्र, स्त्री और प्राणोंतकका भी त्याग करनेके लिये तैयार हो जाता है।

जिस मनुष्यने संसारमें मान-बड़ाई और प्रतिष्ठाका त्याग कर दिया, वही महात्मा है और वही देवता तथा ऋषियोंद्वारा भी पूजनीय है। साधु और महात्मा तो बहुत लोग कहलाते हैं, किन्तु उनमें मान-बड़ाई और प्रतिष्ठाका त्याग करनेवाला कोई विरला ही होता है। ऐसे महात्माओंकी खोज करनेवाले भाइयोंको इस विषयका कुछ अनुभव भी होगा। हमलोग पहले-पहल जब किसी अच्छे पुरुषका नाम सुनते हैं, तब उनमें श्रद्धा होती है, पर उनके पास जानेपर जब हमें उनमें मान-

बड़ाई, प्रतिष्ठा दिखलायी देती है, तब उनपर हमारी वैसी श्रद्धा नहीं ठहरती, जैसी उनके गुण सुननेके समय हुई थी। यद्यपि अच्छे पुरुषोंमें किसी प्रकार भी दोषदृष्टि करना हमारी भूल है, परन्तु स्वभाव-दोषसे ऐसी वृत्तियाँ होती हुई प्रायः देखी जाती हैं और ऐसा होना बिलकुल निराधार भी नहीं है, क्योंकि वास्तवमें एक ईश्वरके सिवा बड़े-से-बड़े गुणवान् पुरुषमें भी दोषोंका कुछ मिश्रण रहता ही है। जहाँ बड़ाईका दोष आया कि झूठ, कपट और दम्भ भी आ ही जाते हैं। जब झूठ, कपट और दम्भको स्थान मिल जाता है तब अन्यान्य दोषोंके आनेको सुगम मार्ग बन जाता है। यह कीर्तिरूपी दोष देखनेमें छोटा-सा है, परन्तु यह केवल महात्माओंको छोड़कर अन्य अच्छे-से-अच्छे पुरुषोंमें भी सूक्ष्म और गुप्तरूपसे रहता है। यह साधकको साधनपथसे गिराकर उसका मूलोच्छेदन कर डालता है।

अच्छे पुरुष बड़ाईको हानिकर समझकर विचारदृष्टिसे उसको अपनेमें रखना नहीं चाहते और प्राप्त होनेपर उसका त्याग भी करना चाहते हैं तो भी यह सहजमें

उनका पिण्ड नहीं छोड़ती। इसका शीघ्र नाश तो तभी होता है जब कि यह हृदयसे बुरी लगने लगे और इसके प्राप्त होनेपर यथार्थमें दुःख और घृणा हो। साधकके लिये साधनमें विघ्न डालनेवाली यह मायाकी मोहिनी मूर्ति है, जैसे चुम्बक लोहेको, स्त्री कामी पुरुषको, धन लोभी पुरुषको आकर्षण करता है, यह उससे भी बढ़कर साधकको संसारसमुद्रकी ओर खींचकर उसे इसमें बरबस डुबो देती है। अतएव साधकको सबसे अधिक इस बड़ाईसे ही डरना चाहिये। जो मनुष्य बड़ाईको जीत लेता है, वह सभी विघ्नोंको जीत सकता है।

योगी पुरुषके ध्यानमें तो चित्तकी चंचलता और आलस्य—ये दो ही महाशत्रुके तुल्य विघ्न करते हैं। चित्तमें वैराग्य होनेपर विषयोंमें और शरीरमें आसक्तिका नाश हो जाता है, इससे उपर्युक्त दोष तो कोई विघ्न उपस्थित नहीं कर सकते; परन्तु बड़ाई एक ऐसा महान् दोष है, जो इन दोषोंके नाश होनेपर भी अन्दर छिपा रहता है। अच्छे पुरुष भी जब हम उनके सामने उनकी बड़ाई करते हैं, तब उसे सुनकर विचारदृष्टिसे इसको

बुरा समझते हुए भी इसकी मोहिनी शक्तिसे मोहित हुए-से उस बड़ाई करनेवालेके अधीन-से हो जाते हैं। विचार करनेपर मालूम होता है कि इस कीर्तिरूपी मोहिनी-शक्तिसे मोहित न होनेवाला वीर करोड़ोंमें कोई एक ही है। कीर्तिरूपी मोहिनी शक्ति जिनको नहीं मोह सकती, वही पुरुष धन्य है, वही मायाके दासत्वसे मुक्त है, वही ईश्वरके समीप है और वही यथार्थ महात्मा है। यह बहुत ही गोपनीय रहस्यकी बात है।

जिसपर भगवान्‌की पूर्ण दया होती है या यों कहें जो भगवान्‌की दयाके तत्त्वको समझ जाता है, वही इस कीर्तिरूपी दोषपर विजय पा सकता है। इस विघ्नसे बचनेके लिये प्रत्येक साधकको सदा सावधान रहना चाहिये।

महापुरुषोंकी महिमा

संसारमें सबसे अधिक संख्या तो सांसारिक भोगोंमें आसक्त मनुष्योंकी ही है। भगवत्प्राप्तिके साधनमें लगे हुए अच्छे पुरुषोंकी संख्या भी कुछ अंशमें देखनेमें आती है, पर महापुरुष तो विरले ही हैं और जो हैं उनसे लोग पूरा लाभ नहीं उठा रहे हैं। इसके मुख्य कारण दो हैं—(१) अश्रद्धा और (२) पहचाननेकी योग्यताका अभाव। श्रद्धा या तो श्रद्धावान् पुरुषोंके संगसे होती है अथवा अन्तःकरणकी शुद्धिसे। पर श्रद्धालुओंकी संख्या भी बहुत कम है और जो हैं भी उनमें हमारी श्रद्धा नहीं है। महापुरुषोंको न पहचाननेका कारण भी अश्रद्धा ही है।

मनुष्योंकी दृष्टि स्वभावतः दोष-दर्शनकी ओर ही अधिक रहती है, जिसके कारण श्रद्धा पहले तो कठिनतासे उत्पन्न होती है और होती है तो उसका स्थिर रहना बड़ा ही कठिन होता है। अच्छे पुरुषोंमें भी लोग दोष-बुद्धि कर ही लेते हैं। साक्षात् भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्ण हमारी विशेष श्रद्धाके पात्र हैं, परन्तु

दोषदृष्टिवालोंको उनके चरित्रकी आलोचना करनेपर उनमें भी दोष मिल ही जाते हैं। वाल्मीकीय रामायणमें तो श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रमें अनेक दोष और सन्देहजनक स्थल मिल ही सकते हैं पर जिन गोस्वामी तुलसीदासजीने दोषोंका बहुत कुछ परिहार करनेकी चेष्टा की है उनके 'मानस' में भी अज्ञ और अश्रद्धालु लोग दो-तीन स्थलोंपर सन्देह, तर्क और अश्रद्धा कर बैठते हैं। उनका कहना है कि रामने बालिको छिपकर बाणद्वारा मारा, शूर्पणखाके साथ मजाक किया और अग्नि-परीक्षामें उत्तीर्ण हो जानेपर भी निरपराधिनी सीताका परित्याग करके लोकनिन्दाको अधिक महत्त्व देकर न्याय और आत्मबलकी न्यूनता दिखलायी। इसके सिवा श्रीराम साधारण मनुष्योंकी भाँति सीताके लिये विलाप करने और जोर-जोरसे रोने लगे। इसी प्रकार श्रीकृष्णकी बाल-लीलामें वे चोरी, व्यभिचार और झूठ आदिके दोष लगाते हैं। उनके प्रौढ़ावस्थाके कार्योंमें भी अनेक दोषोंकी कल्पना करते रहते हैं—जैसे युधिष्ठिरको मिथ्याभाषणके लिये प्रेरित करना, युद्धक्षेत्रमें शस्त्र धारण न करनेकी

प्रतिज्ञाको तोड़कर आवेश और क्रोधमें आकर उन्मत्तकी भाँति भीष्मके सम्मुख दौड़ना। इन स्थलोंपर उन्हें श्रीकृष्णमें मिथ्याभाषण, प्रतिज्ञाभंग और अनुचित व्यवहारके दोष प्रत्यक्ष दृष्टिगत होते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि दोष देखनेवालोंको तो निर्विकार अवतारोंमें भी दोष मिल ही जाते हैं। तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है? परन्तु बात तो यह है कि हम विषय-विमूढ़ जीव भगवान्‌की लीला और उनके कार्योंको क्या समझें? उनपर किसी प्रकारका कानून तो लागू है नहीं और यदि है भी तो हम उसे समझ ही कैसे सकते हैं? जब ज्ञानीकी क्रियाओंको समझनेमें ही हमारी बुद्धि जवाब दे देती है तो फिर साक्षात् मायापति ईश्वरके कार्योंको विचारने और समझनेकी हममें योग्यता ही क्या है? यदि हम स्वभाव-दोषसे उनको तर्ककी कसौटीपर कसनेका निन्दनीय प्रयास करें तो वह हमारी युक्ति और तर्कके आधारपर ही ईश्वरकी सिद्धि हुई। फिर ईश्वरमें ईश्वरत्व ही क्या रहा? ऐसी दशामें तो कोई भी व्यक्ति श्रद्धाके योग्य प्रमाणित नहीं होता—किसीपर भी श्रद्धा नहीं की जा सकती।

पर, हमें यह बात भलीभाँति समझ लेनी चाहिये कि उत्तम क्रियाशील ज्ञानीकी समस्त क्रियाओंको हम समझ नहीं सकते। अतः उनमें शंका करनी किसी भी प्रकारसे उचित नहीं है। यदि श्रद्धाकी कमीके कारण उनमें कोई दोष दीख भी जाय तो विचारद्वारा मनमें समाधान करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। इतना करनेपर भी यदि सन्तोष न हो तो श्रद्धा और विनयपूर्वक उन्हें पूछकर भी सन्देह निवृत्त किया जा सकता है। महात्माओंको न पहचाननेमें प्रधान हेतु अन्तःकरणकी मलिनतासे पैदा हुई अश्रद्धा ही है। जब हम किसी महापुरुषके पास जाते हैं तो अश्रद्धाको प्रायः साथ ही लेकर जाते हैं। हम इसी बातकी परीक्षा करते फिरते हैं कि किन महात्माजीमें कितना पानी है। दुःखकी बात तो यह है कि हम एक साधारण वैद्यकी भी इतनी परीक्षा नहीं करते। वह चाहे नितान्त अज्ञ ही हो, पर फिर भी हम अपना जीवन सर्वतोभावेन उसके समर्पण कर देते हैं। यदि वह विष पिला दे तो भी हम उसे पीनेमें नहीं हिचकते। मेरे कहनेका यह अभिप्राय नहीं कि कोई

ढोंगी मनुष्य महात्मा बन बैठा हो तो उसीमें अन्धे होकर श्रद्धा कर लेनी चाहिये। श्रद्धा करनेकी आवश्यकता है सच्चे महापुरुषोंमें, पर जबतक हमको ऐसे पूर्ण महात्मा न मिलें, तबतक हम जिन्हें अपनी बुद्धिसे अच्छे पुरुष समझें, उन्हींके सद्‌गुणोंको ग्रहण करना चाहिये। दुर्गुण तो किसीके भी नहीं लेने चाहिये। उपनिषद्‌में कहा है—

यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकꣳसुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।

(तैत्ति० १।११।२)

गुरु कहता है—'हे शिष्य! जो शास्त्रोक्त कर्म हैं उन्हींका तुम्हें आचरण करना चाहिये, शास्त्रविरुद्धका नहीं; हममें भी जो अच्छे कर्म हैं केवल उन्हींका तुम्हें अनुकरण करना उचित है, दूसरे (निन्दनीय) कर्मोंका नहीं।'

पूर्ण महात्माओंके दर्शन हो जायँ तब तो कहना ही क्या है, क्योंकि उनके मुखसे जो शब्द निकलते हैं वे पूर्णतः तुले हुए होते हैं। जैसे एक व्यापारी अपनी दूकानका माल तौल-तौलकर ग्राहकोंको देता है—अन्दाजसे नहीं।

इसी प्रकार महापुरुषकी वाणीका प्रत्येक शब्द उसके हृदयरूपी तराजूपर तुल-तुलकर आता है। उनके वाक्य अमूल्य होते हैं, उनकी क्रियाएँ अमूल्य होती हैं और उनका भजन अमूल्य होता है। उनके मन, वाणी और शरीरके प्रत्येक कार्य महत्त्वपूर्ण और तात्त्विक होते हैं। उनकी मौन—अक्रिय-अवस्थामें भी विश्व-कल्याणका उपदेश भरा रहता है। अतः उनका भाषण, स्पर्श, दर्शन, कर्म, ध्यान और यहाँतक कि उनकी छूई हुई वस्तु भी पवित्र समझी जाती है। भगवान्‌ने ऐसे ही महापुरुषोंका अनुकरण करना बतलाया है।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

(गीता ३। २१)

वे जो कुछ प्रमाणित कर देते हैं (स्वयं चाहे न करें और केवल कह दें कि मैं अमुक कार्यको अच्छा मानता हूँ) लोग उसीको प्रामाणिक मानने लगते हैं। उनका उपदेश, उनको किया हुआ नमस्कार, उनके साथ किया हुआ सम्भाषण—सभी कुछ कल्याणकारक होता है। ज्ञान-प्राप्तिद्वारा आत्मोद्धारके लिये उन पुरुषोंकी शरण

ग्रहण करनी चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(गीता ४। ३४)

'हे अर्जुन! उन तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानी पुरुषोंसे, भलीभाँति दण्डवत्-प्रणाम, सेवा और निष्कपट-भावसे किये हुए प्रश्नोंद्वारा उस ज्ञानको जानो, वे मर्मको जाननेवाले ज्ञानीजन तुम्हें उस ज्ञानका उपदेश करेंगे।'

इस प्रकारके पुरुष यदि हमें मिल जायँ और फिर हम उन्हें पहचानकर उनका अमोघ संग करें तथा उनकी बातोंको लोहेकी लकीर—ईश्वरकी आज्ञाके तुल्य मानकर काममें लावें तो हम अपना तो क्या, दूसरोंका भी कल्याण करनेमें समर्थ हो सकते हैं! गंगाके स्नान-पानसे जिस प्रकार बाहर-भीतरकी पवित्रता होती है, उससे भी बढ़कर महात्माओंका संग पावन करनेवाला होता है। दुर्भाग्यवश यदि ऐसे सिद्ध भक्तोंकी प्राप्ति न हो अथवा होकर भी यदि हम उन्हें पहचान न सकें तो दूसरे दर्जेमें शास्त्रों और दैवी सम्पदावाले साधकोंको आधार बनाना चाहिये।

शास्त्रोंकी अधिकता और उनमें प्रतिपादित विषयोंकी गूढ़ताको न समझ सकनेके कारण केवल गीता ही हमारे लिये पर्याप्त हो सकती है, क्योंकि भगवान्‌ने इसमें सब शास्त्रोंका सार भर दिया है। अतः सर्वस्वका नाश होनेपर भी गीता और महात्मा पुरुषोंकी बात नहीं टालनी चाहिये। इतनी श्रद्धा हो जानेपर फिर कल्याण होनेमें देरीका कोई काम नहीं। जिस माताके गर्भसे ऐसा सुपुत्र उत्पन्न हो, वह निस्सन्देह ही पुण्यवती और सौभाग्यशालिनी है।

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥

ऐसे महापुरुष भागीरथीकी तरह स्वयं पवित्र और दूसरोंको भी पवित्र करनेवाले होते हैं। शास्त्रकारोंने तो महात्माओंकी महिमा गंगासे भी बढ़कर बतलायी है। इस विषयकी निम्नलिखित कथा प्रसिद्ध है—

एक बार गंगाने ब्रह्माजीके पास जाकर यह प्रार्थना की कि 'महाराज! असंख्य पापियोंके दल मुझमें स्नान करके अपने अनन्त जन्मोंके पाप छोड़ जाते हैं, फिर मेरे लिये भी तो कोई ऐसा उपाय होना चाहिये कि जिससे मैं

भी पापमुक्त और पवित्र बन सकूँ।' इसके उत्तरमें ब्रह्माजी बोले—'गंगे! सन्तोंके होते हुए तुझे चिन्ता ही किस बातकी है? उनके चरण-स्पर्शमात्रसे तेरे समस्त पापोंका तत्काल विध्वंस हो जायगा।' वास्तवमें सन्तोंकी चरणरजमें ऐसी अद्‌भुत शक्ति है कि उसे मस्तकपर रखते ही मनुष्य पवित्र हो जाता है। ऐसे भगवद्‌भक्त पवित्रको भी पवित्र करनेवाले होते हैं। '**तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि।**' (नारदभक्तिसूत्र ६९) वे जहाँ तप करते हैं वही भूमि तीर्थ बन जाती है। तीर्थोंका तीर्थत्व सन्तों और प्रभुके संगसे ही माना जाता है। जहाँ भगवान्‌ने वास किया अथवा महापुरुषोंने तपस्या की वही स्थान तीर्थ बन गया। कपिलायतन और भारद्वाज-आश्रमके दर्शनार्थ लोग इसीलिये जाते हैं कि वहाँ कपिल और भारद्वाजने तपस्या की थी। पंचवटी और चित्रकूटकी पवित्रता भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके वहाँ निवास करनेके कारण ही मान्य है। नर-नारायणकी तपोभूमि होनेके कारण ही बदरिकाश्रमके दर्शनार्थ लोग कठिन कष्ट सहकर भी जाते हैं। पुलको वानर-सेनाने बनाया था, इसीसे आज

सेतुबन्ध-रामेश्वरके पाषाणखण्डोंको लोग पूज्य मानते हैं। भक्त जो क्रिया कर जाते हैं, वह लाखों वर्षोंके बाद भी पूजित होती है। नैमिषारण्यमें सन्त एकत्र होकर हरि-चर्चा किया करते थे, इसीसे वह स्थान तीर्थ माना जाता है। अवध और सरयूकी महिमाका प्रधान कारण श्रीरामावतार ही है। मथुरा, गोकुल और वृन्दावन आदि तीर्थ श्रीकृष्णावतारके कारण ही इतने अधिक मान्य और पूजित हैं। संसारमें जितने भी तीर्थ और देवस्थान हैं उन सबकी महिमाके प्रधान कारण भगवान् और उनके भक्त ही हैं। परमपावनी भागीरथी प्रभुचरणोंके प्रभावसे ही सर्वश्रेष्ठ मानी जाती हैं—

स्त्रोतसामस्मि जाह्नवी (गीता १०। ३१)

कहीं-कहीं तो भक्तोंकी महिमा भगवान्से भी बढ़कर बतलायी गयी है यथा—

मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥
राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा॥

इन चौपाइयोंमें श्रीरामकी निन्दा नहीं समझनी चाहिये, इनसे उनकी महिमा और भी बढ़ती है। यद्यपि प्रत्यक्षमें

इनके द्वारा भक्तोंकी महिमा ही प्रकट होती है पर वस्तुतः यह महिमा भगवान्‌की ही है, क्योंकि उनकी महामहिमासे ही भक्त महिमान्वित होते हैं। ऐसे महापुरुषोंका संग मिलना बड़ा ही कठिन है, पुण्यके प्रभावसे ही उनकी प्राप्ति होती है—

पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥

भगवान् श्रीकृष्णने भी कहा है—

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

(गीता १३। २५)

दूसरे यानी जो मन्द-बुद्धिवाले पुरुष हैं वे स्वयं इस प्रकार न जानते हुए दूसरोंसे यानी तत्त्वके जाननेवाले महापुरुषोंसे सुनकर उपासना करते हैं—उनके कहनेके अनुसार ही श्रद्धासहित तत्पर होकर साधन करते हैं (इससे) वे सुननेके परायण हुए पुरुष भी मृत्युरूपी संसार-सागरसे निस्सन्देह तर जाते हैं।

वेद, उपनिषद्, इतिहास, पुराण सभी शास्त्रोंमें स्थान-स्थानपर महापुरुषोंकी महिमाका एक स्वरसे गान किया गया है। फिर परमात्माकी गुणगरिमाकी तो बात

ही क्या है? उनकी महिमाका जितना भी गान किया जाय, सभी थोड़ा है। महात्माओंकी अथवा वैभव-सम्पन्न सांसारिक लोगोंकी जो कुछ भी बड़ी-से-बड़ी महिमा हमारे देखने-सुननेमें आती है, वह सब वास्तवमें भगवान्‌की ही महिमा है। भगवान्‌ने कहा है—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥

(गीता १०।४१)

'हे अर्जुन! जो-जो भी ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे ही तेजके अंशसे उत्पन्न हुई जान।' ऐसे महामहिम प्रभुके या प्रेमी भक्तोंके समागमद्वारा भी जो मनुष्य लाभ नहीं उठा सकते, उनके लिये भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने ठीक ही कहा है—

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

सन्त-शिरोमणि तुलसीदासजीने तो साधु-संगके सुखको मुक्तिके सुखसे भी अधिक आदर दिया है—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

उन्होंने तो यहाँतक कह दिया है कि बिना सत्संगके मनुष्यका उद्धार हो ही नहीं सकता—

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

इस प्रकार महात्माओंके अमोघ संग और महती कृपासे जो व्यक्ति परमात्माके रहस्यसहित प्रभावको तत्त्वसे जान जाता है वह स्वयं परम पवित्र होकर इस अपार संसार-सागरसे तरकर दूसरोंको भी तारनेवाला बन सकता है।